चिति-2

- दीनदयाल उपाध्याय

(राष्ट्र धर्म, कार्तिक पूर्णिमा, वि.सं. 2005, अंक 6)

किसी भी राष्ट्र का अस्तित्व उसकी चिति के कारण होता है। चिति के ही उदयावपात होता है। भारतीय राष्ट्र के भी उत्थान और पतन का वास्तविक कारण हमारी चिति का प्रकाश अथवा उसका अभाव है। आज भारत उन्नति की आकांक्षा कर रहा है। संसार में बलशाली एवं वैभवशाली राष्ट्र के नाते खड़ा होना चाहता है। चारों ओर लोग इस ध्येय का उच्चारण कर रहे हैं तथा उसके लिए प्रयत्नशील भी हैं। ऐसी दशा में हमको अपनी चिति का ज्ञान करना आवश्यक है। बिना चिति के ज्ञान के प्रथम तो हमारे प्रयत्नों में प्रेरक शक्ति का अभाव रहने के कारण वे फलीभूत नहीं होंगे; द्वितीय मन में भारत के कल्याण की इच्छा रखकर और उसके लिए जी तोड़ परिश्रम करके भी हम भारत को भव्य बनाने के स्थान पर उसको नष्ट कर देंगे। स्वप्रकृति के प्रतिकूल किए हुए कार्य के परिणामस्वरूप जीवन में जो परिवर्तन दिखाई देता है, वह विकास के स्थान पर विनाश का द्योतक है और इस प्रकार 'विनायकं प्रकुर्वाणो रचयामास वानरम' की उक्ति चरितार्थ होती है।

हमारे राष्ट्र जीवन की चिति क्या है? हमारी आत्मा का क्या स्वरूप है? इस स्वरूप की व्याख्या करना कठिन है; उसका तो साक्षात्कार ही संभव है, किंतु जिन महापुरषों ने राष्ट्रात्मा का पूर्ण साक्षात्कार किया, जिनके जीवन में चिति का प्रकाश उज्ज्वलतम रहा है उनके जीवन की ओर देखने से, उनके जीवन की क्रियाओं और घटनाओं का विश्लेषण करने से, हम अपनी चिति के स्वरूप की कुछ झलक पा सकते हैं। प्राचीन काल से लेकर आज तक चली आनेवाली राष्ट्र पुरुषों की परंपरा के भीतर छिपे हुए सूत्र को यदि हम ढूँढ़े तो संभवतया चिति के व्यक्त परिणाम की मीमांसा से उसके अव्यक्त कारण की भी हमको अनुभूति हो सके। जिन महान् विभूतियों के नाम स्मरण मात्र से हम अपने जीवन में दुर्बलता के क्षणों में शक्ति का अनुभव करते हैं, कायरता की कृति का स्थान वीर व्रत ले लेता है, उनके जीवन में कौन सी बात है, जो हममें इतना सामर्थ्य भर देती है? कौन सी चीज है जिसके लिए हम मर मिटने के लिए तैयार हो जाते हैं? हमारा मस्तक श्रद्धा से किसके सामने नत होता है और क्यों?

वह कौन सा लक्ष्य है जिसके चारों ओर हमारा राष्ट्र जीवन घूमता आया है? अपने राष्ट्र के किस तत्त्व को बचाने के लिए हमने बड़े-बड़े युध्द किए? किसके लिए लाखों का बलिदान हुआ? उत्तर हो सकता है भारत की भूमि के लिए। किंतु भारत से तात्पर्य क्या जड़ भूमि से है? क्या हमने हिमालय

के पत्थर और गंगा के जल की रक्षा की है? हमारे अवतारों ने किस हेतु जन्म लिया था? उनको हम भगवान् का अवतार क्यों कहते हैं?

उपर्युक्त अनेक प्रकार के प्रश्न हैं। इन प्रश्नों का यदि हम उत्तर दें तो हमको अपनी चिति का पता चल सकता है। हमारे शास्त्रकारों ने इसको 'धर्म' के नाम से पुकारा है। आज धर्म शब्द के भ्रमपूर्ण अर्थ प्रचलित हो गए हैं। अंग्रेजी के रिलीजन का पर्यायवाची मानकर तथा रिलीजन और दीन के नाम पर यूरोप तथा अन्य देशों में जो-जो अमानुषिक अत्याचार हुए हैं उनका संबंध इसके साथ बैठाकर, लोग धर्म शब्द से चिढ़ने लग गए हैं। वे धर्म को नष्ट करने पर तुले हुए हैं अथवा उनमें जो नरम दल के हैं वे धर्म को केवल व्यक्तिगत जीवन तक सीमित चाहते हैं। राष्ट्र और समाज का धर्म से वे कोई संबंध नहीं मानते। जहाँ तक 'धर्म' से उनका तात्पर्य रिलीजन से है, वे सही हो सकते हैं। किंतु धर्म का अर्थ तो व्यापक है और इस व्यापक अर्थ के पीछे जो भाव हैं वे ही भाव भारत की कोटि-कोटि जनता में धर्म शब्द को सुनकर उत्पन्न होते हैं। आज राम और कृष्ण हमारे धर्म के महापुरुष कहे जाते हैं। क्या वे किसी की व्यक्तिगत संपत्ति है? कौन सा राष्ट्र भक्त उनकी स्मृति को भारत से मिटा देना चाहेगा? रामायण और महाभारत हमारे धर्म ग्रंथ हैं। क्या वे हमारे लिए अपठनीय हैं? क्या उनमें आज के राष्ट्र जीवन को प्रेरणा देनेवाला कुछ भी नहीं है? हमारा धर्म हमको गंगा को पवित्र मानना सिखाता है, हमारा धर्म हमको चारों धाम की यात्रा द्वारा भारतभूमि की परिक्रमा करने को कहता है। क्या यह राष्ट्र भक्ति की उज्ज्वलतम भावना ही नहीं है?

हमारा धर्म हमारे राष्ट्र की आत्मा है। बिना धर्म के राष्ट्र जीवन का कोई अर्थ नहीं रहता। भारतीय राष्ट्र न तो हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक फैले हुए भू-खंड से बन सकता है और न तीस करोड़ मनुष्यों के झुंड से। एक ऐसा सूत्र चाहिए जो तीस करोड़ को एक-दूसरे से बाँध सके, जो तीस कोटि को इस भूमि में बाँध सके। वह सूत्र हमारा धर्म ही है बिना धर्म के भारतीय जीवन का चैतन्य ही नष्ट हो जाएगा, उसकी प्रेरक शक्ति ही जाती रहेगी। अपनी धार्मिक विशेषता के कारण ही संसार के भिन्न-भिन्न जन समूहों में हम भी राष्ट्र के नाते खड़े हो सकते हैं। धर्म के पैमाने से ही हमने सबको नापा है। धर्म की कसौटी पर ही कसकर हमने खरे-खोटे की जाँच की है। हमने किसी को महापुरुष मानकर पूजा है तो इसलिए कि उनके जीवन में पग-पग हमको धार्मिकता दृष्टिगोचर होती है। राम हमारे आराध्य देव बनकर रहे हैं और रावण सदा से घृणा का पात्र बना है। क्यों? राम धर्म के रक्षक थे और रावण धर्म का विनाश करना चाहता था। युधिष्ठिर और दुर्योधन दोनों भाई-भाई थे, दोनों राज्य चाहते थे, एक के प्रति हमारे मन में श्रद्धा है तो दूसरे के प्रति घृणा।

केवल धर्म के भाव अथवा अभाव के कारण ही एक स्थान पर एक को बुरा मानते हैं तो दूसरे स्थान पर उसीको अच्छा कहते हैं। इसीके लिए देशद्रोही विभीषण परम वैष्णव हुआ और सुई के बराबर भी भूमि न देने को तैयार दुर्योधन विष्णुद्रोही गिना गया। एक ओर राजभक्ति को हमने माना है तो धर्म के लिए ही ऋषियों ने वेन को राज्यच्युत किया था। धर्म के लिए ही श्रवणकुमार अपने माता-पिता को कंधे पर लिए-लिए घूमा, धर्म के लिए ही प्रह्लाद ने हिरण्यकश्यप का विरोध किया। राम ने एक पत्नी-व्रत का पालन करके धर्म की रक्षा की तो कृष्ण ने अनेकों विवाह करके उसी धर्म को निभाया। अपने इतिहास में अनेक ऐसे श्रद्धास्पद उदाहरण मिलेंगे जिनमें इस प्रकार का विरोधाभास होगा, उनकी निराकृति केवल धर्म के भाव से ही संभव है।

हम अपने जीवन में धर्म को महत्त्व देकर ही प्रत्येक कार्य करते हैं। हमारा उठना-बैठना, सोना, खाना-पीना सबके पीछे धर्म का भाव रहता है। इसलिए स्मृति ग्रंथों में उनके संबंध में नियम दिए गए हैं। स्मृति-ग्रंथों को सभी धर्म-ग्रंथ मानते हैं। हमारा साहित्य लोक-कल्याण की धार्मिक भावना से ही प्रेरणा लेता है कवि अपनी रचना 'स्वान्त: सुखाय' करते हुए भी अंत:करण में आत्मा के साक्षात्कार की अनुभूति में सुख लेता हुआ धार्मिक प्रवृत्ति की उच्चतम अवस्था को प्राप्त करता है। क्या कोई कवि भारत में हुआ है जिसके काव्य के एक-एक पद में राष्ट्रात्मा की पुकार हो और वह धार्मिक भावना से परिपूर्ण न हो। हमारे बाल्मीकि, व्यास, कालिदास, तुलसी, सूर, ज्ञानदेव, समर्थ, चैतन्य और नानक कवि थे, साथ ही ऋषि और संत भी थे। हमारे धर्म को अपने आचरण में लानेवाले आदर्श महापुरुष थे। इसीलिए उनके शब्द राष्ट्र के शब्द हो गए हैं; उनकी वाणी युग-युग में राष्ट्र जीवन का संचार करती आई है। हमारे राजनीतिज्ञ, आचार्यों ने भी राजनीति पर धर्म का पुट चढ़ाया है। शुक्राचार्य और चाणक्य धर्मविहीन राजनीति के पोषक नहीं थे। धर्महीन राजनीति का कोई अर्थ ही नहीं है। हमारे सम्राटों ने अश्वमेघ यज्ञ धर्म समझकर किए या राजनीति समझकर? राणा प्रताप का अकबर से युध्द राजनीति के क्षेत्र में आता है या धर्म के क्षेत्र में। शिवाजी और गुरु गोविंद सिंह राजनीतिक नेता हैं या धार्मिक। दयानंद और विवेकानंद के कार्य का भारत की राजनीति और राष्ट्र पर क्या कोई प्रभाव नहीं है? गांधीजी के भारत व्यापी प्रभाव के पीछे उनका महात्मापन, उनका धार्मिकपन है या राजनीति? स्वदेशी आंदोलन में फाँसी के तख्ते पर गीता की प्रति लेकर चढ़नेवाले क्रांतिकारी वीरों में धार्मिक प्रेरणा थी या राजनीतिक? हम देखते हैं कि दोनों को अलग नहीं कर सकते। हमारी राजनीति हमारी धार्मिक वृत्ति का ही परिणाम है, अपनी धार्मिकता की रक्षा करने की एक साधन-मात्र है। यह धार्मिक प्रवृत्ति हमारे राज्य में इतनी व्यापक है कि उससे कोई क्षेत्र अछूता नहीं रहता। वर्णाश्रम धर्म समाज की एक प्रणाली है किंतु हमने इसको धर्म की वेशभूषा से सुसज्जित किया है। विवाह एक जीवन और समाज की आवश्यकता है, हमने इसको धर्मकृत्य माना है। संतानोत्पत्ति हम धर्म समझकर करते हैं और संतान भी माता-पिता की सेवा धर्म समझकर ही करती है। मरने के बाद श्राद्ध क्रिया भी धर्म मानकर की जाती है। यद्यपि इन सब कार्यों की तह में समाज रचना, जाति की सनातन परंपरा तथा राष्ट्रत्व

है। हम नित्य बड़े-बूढ़ों की वंदना करते हैं यह हमारा धर्म है। हम नित्य स्नान करते हैं यह गाँव का कोई भी व्यक्ति बताएगा कि उसका धर्म है। इसलिए कर्मकांडी लोग बीमारी की अवस्था तक में स्नान करते हैं। बिना स्नान नहीं रह सकते। बिना स्नान के भोजन न करना धर्म ही है। कुएँ पर जूते ले जाना अधर्म है। भोजन की स्वच्छतापूर्वक बनाना धर्म है। अपने-अपने घर में तुलसी हम धर्म समझकर ही रखते हैं, वह मलेरिया नाशक है, यह समझकर नहीं। स्वच्छता और स्वास्थ्य के सभी नियम धर्म बन गए हैं। हमारा कृषक बीज बोता है, उसके पीछे धर्म भावना छिपी है। धर्म भावना के कारण ही, चाहे आज वह विकृत क्यों न हो गई हो, बहुत स्थानों पर ब्राह्मण हल को हाथ नहीं लगाता है। विद्यार्थी गुरु की सेवा करता है, गुरु विद्यार्थी को पुत्रवत् मानता है, इन दोनों के पीछे धर्म की भावना है, की भावना नहीं। जितने ही उदाहरण हम लें सबमें हमें यह दिखाई देगा कि हमारी धार्मिक प्रवृत्ति रही है। जीवन के प्रत्येक कृत्य को हमने धार्मिक रंग में रँगा है और धर्म से प्रेरणा लेकर ही हमने अपने जीवन की रचना की है।

भारत का राष्ट्र जीवन युग-युग में भिन्न-भिन्न स्वरूप में व्यक्त हुआ है किंतु उसके मूल में उसकी धर्म भावना रही है और इसीलिए अनेक विद्वानों ने कहा भी है कि भारत धर्मप्राण देश है। आज अपनी इस आत्मा की प्रेरणा को अचेतन से चेतन के क्षेत्र में लाने पर ही राष्ट्र जीवन में जो विकृति दिखाई देती है, जो विक्षुब्ध, संघर्षमय, अनिश्चितता की अवस्था है, वह दूर की जा सकती है।